

---

## इकाई 14 ध्यान

---

### इकाई की रूपरेखा

- 14.0 उद्देश्य
- 14.1 प्रस्तावना
- 14.2 ध्यान (6/10-26) श्लोक, अनुवाद और व्याख्या
- 14.3 सारांश
- 14.4 शब्दावली
- 14.5 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 14.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

### 14.0 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- गीता में वर्णित 'ध्यान' योग के विषय में जान सकेंगे।
- ध्यान योग से पूर्व शुद्धता तथा शारीरिक स्थिरता के विषय में जानेंगे।
- योगी द्वारा मन को किस प्रकार से वश में किया जाता है यह ज्ञान होगा।
- आत्मस्थित योगी के विषय में जान सकेंगे।
- योग का अभ्यास किस प्रकार से सिद्ध होता है इस विषय में जान सकेंगे।
- शरीर, इन्द्रियाँ तथा मन के विषय में जान सकेंगे।

---

### 14.1 प्रस्तावना

---

गीता में कृष्ण और अर्जुन के मध्य हुए संवाद में कृष्ण द्वारा अर्जुन के अनेक संशयों का निराकरण किया जाता है तथा अनेक जीवन के रहस्यों और उद्देश्यों का उपदेश दिया जाता है जिसमें 'ध्यान कर्म योग' एक मुख्य विषय है। जिसमें कृष्ण अर्जुन को ध्यान साधना से प्राप्त होने वाले अनेक परिणामों के विषय में बताते हैं, किस प्रकार ध्यान समाधि में स्थित होना चाहिए और किस प्रकार अपने मन को नियन्त्रित करके सांसारिक विषयों से मुक्त होकर परमात्मा में अपने ध्यान को अवस्थित करें। ध्यान से अपनी इन्द्रियों तथा मन को वश में करके बाहरी सांसारिक विषयों से व्यक्ति मुक्त होकर परमानन्द का अनुभव कर सकता है, तथा मन को आत्मस्थित करके ही मनुष्य निर्वातदीप के भाँति अनेक कठिन परिस्थितियों में भी विचलित नहीं हो सकता। योग साधना के निरन्तर अभ्यास से काम, क्रोध, मोह आदि षड् रिपुओं (शत्रुओं) का दमन करके अन्तःकरण (मन) को शान्ति प्राप्त हो। 'ध्यान' योग हर मनुष्य के जीवन में वह विज्ञान है जो उसके शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक तथा अध्यात्मिक सभी का विकास कर सकता है। इस प्रकार से ध्यान हमारे जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण और उपयोगी हो जाता है। ध्यान के विषय में अधोलिखित प्रस्तुत 'ध्यान' नामक इकाई में विस्तृत वर्णन किया गया है।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।

एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥६/१०॥

**अनुवाद** —मन और आत्मा (इन्द्रियों) सहित शरीरको, अन्य विषयों से हटाकर, संग्रह भाव से रहित, अकेले ही एकान्त स्थान में स्थित होकर योगी हमेशा स्वयं (मन शरीर एवं आत्मा) को समाधि में लगाये।

**व्याख्या** —योगी को चाहिए कि वह निरन्तर अपने शरीर, मन तथा आत्मा को वश में करके, इच्छाओं से रहित अर्थात् वैराग्य द्वारा सब विषय भोगों को त्यागकर, संग्रहण करने की भावना को त्यागकर, अकेला ही किसी एकान्त स्थान में जाकर (जहाँ समाधि में किसी भी प्रकार की बाधा न आये) योग का अभ्यास करें।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥६/११॥

**अनुवाद** —उस आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिये योग का अभ्यास करें।

**व्याख्या** —आसन के स्थापन के पश्चात् क्या करें — इस विषय में यहाँ कहते हैं कि — साधक को चाहिए कि वह अपने मन को सभी सांसारिक विषयों से हटाकर ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ दोनों को ही वश में कर मन को अंतर्मुखी तथा एकाग्रचित्त करके (यतचित्तेन्द्रियक्रिय), आत्म शुद्धि (अविद्या और अविद्या के कार्यरूप जैसे मेरा—तेरा— मैं आदि मिथ्या मोह—वासनाओं की निवृत्ति) अर्थात् अंतःकरण की शुद्धि के लिए योगाभ्यास करें।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।

उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥६/१२॥

**अनुवाद** —मन तथा इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में करते हुए, शुद्ध (पवित्र) भूमि में, न अत्यधिक ऊँचा और न अत्यधिक नीचा, मृगछाला तथा कुश का आवरण (ऐसे) स्वयं के आसन को स्थापित करके, उस आसन पर बैठकर, मन को एकाग्र करके, अन्तःकरण (हृदय) की शुद्धि के लिये, योग का अभ्यास करें।

**व्याख्या** —योगाभ्यास के लिए आसन का चयन— जो स्थान शुद्ध स्वच्छ किया हुआ हो, जैसे नदी किनारे अथवा गुफा आदि निर्जन स्थान में जो पवित्र किया हुआ हो, समाधि का आसन ऐसा हो जो न अधिक ऊँचा हो न ही अधिक नीचा हो अर्थात् जिस स्थान पर सुख पूर्वक बैठा जा सके, साधक द्वारा आसन पर क्रमपूर्वक पहले कुशा बिछाए फिर मृगचर्म अन्तिम में मुलायम वस्त्र का प्रयोग में लायें, (इन सभी को ध्यान में रखकर साधक को पवित्र स्थान के साथ साथ सुखासन का ध्यान रखना चाहिए)

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।

सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥६/१३॥

**अनुवाद** —शरीर, सिर और गर्दन को समान तथा सीधा धारण करते हुए, स्थिर होकर अपनी नासिका के आगे वाले भाग को देखकर, और (अन्य) दिशाओं को न देखते हुए।

**व्याख्या** —आसन में स्थित शरीर की अवस्था — आसन पर बैठे हुए योगाभ्यासी के शरीर की अवस्था कैसी हो इस विषय में कहते हैं, आसन पर स्थित साधक अपने अपने काय (काय अर्थात् कमर का ऊपर वाला हिस्सा) के साथ साथ अपने शिर तथा गर्दन को (कायशिरोग्रीवा) बिना हलचल अचलरूप से धारण करता हुआ तथा अपनी नासिका के अग्रभाग को एकटक लगाकर देखता हुआ जिससे अन्य जगह दृष्टिपात न हो केवल एक ही केन्द्रबिन्दु पर ध्यान लगा रहे। (इसी प्रकार हमें अन्य ज्ञानेन्द्रियों को भी समझना चाहिए जो कि बाह्य विषयों पर ध्यान न देते हुए अंतःकरण की ओर ही ध्यान केन्द्रित करें।

**प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।**

**मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत् मत्परः॥६/१४॥**

**अनुवाद** —अविचलित शान्त अन्तःकरण (मन) वाला, भय से रहित, ब्रह्मचारी के व्रत में स्थित (होकर), मन को नियन्त्रित करके, मुझमें (कृष्ण में) मन को (लगाने वाला), मुझमें आसक्त होकर स्थित होवे (बैठे)।

**व्याख्या** —प्रशान्तात्मा— राग—द्वेष, इष्ट—अनिष्ट, प्रीति—अप्रीति आदि सभी विषयों से रहित मन अच्छी प्रकार से शान्त हुए अन्तःकरण वाला, विगत भी — भय जिसका दूर हो गया है सभी प्रकार के कर्मों के परित्याग से, ब्रह्मचारीव्रतेस्थित— ब्रह्मचर्य धारण करने वाला जिसने भिक्षा लेकर भोजन करने वाला गुरु के समीप जाकर गुरुसेवा करके ज्ञान प्राप्त करने वाला, मनःसंयम्य— बाहरी विषयों में प्रवृत्त मन का संयम करके यानि मन की वृत्तियों का निग्रह करके, मच्चिद — मुझमें जिसका चित्त लगा हुआ है जिसने बाहरी सांसारिक विषयों में जाने वाले चित्तका संयम करके मुझमें भली—भांति स्थापित कर दिया है, स्वयं को मुझमें आसक्त कर लिया है, और मुझे ही सर्वश्रेष्ठ मानता है।

**युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।**

**शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥६/१५॥**

**अनुवाद** —इस प्रकार से संयमित किये हुए मन वाला योगी हमेशा स्वयं (शरीर, मन तथा आत्मा) को मुझ परममोक्ष स्वरूप (परमेश्वर) में लगाते हुए, मुझमें स्थित (परमानन्द) शान्ति को प्राप्त करता है।

**व्याख्या** —यहाँ योग के फल के विषय में बताते हैं — जिसने अपने मन पर पूर्णरूप से नियन्त्रण पा लिया है, जिसने निरन्तर योगाभ्यास के द्वारा आत्मशुद्धि कर लिया है ऐसा योगी आत्मा का समाधान करते हुए अपनी आत्मा को और मन को, श्रद्धा से (मुझमें) ब्रह्म में अनुसन्धान करता हुआ, बारम्बार (मुझमें) परमात्मा में अपने मन को स्थिर कर, शरीर सम्बन्ध से रहित, परमपुरुषार्थ कैवल्य की प्राप्ति जिससे हो ऐसे मोक्षरूप शान्ति को पाता है।

**नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।**

**न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥६/१६॥**

**अनुवाद** —हे अर्जुन ! न तो अधिक भोजन खाने वाले का योग (सिद्ध होता है), और न बिल्कुल भोजन (त्याग) करने वाले का, और न ही अत्यधिक शयन करने वाले का, और न हमेशा जागे हुए का ही (योग सिद्ध) होता है।

**व्याख्या** —योगी के लिए उपयुक्त आहार नियम — बहुत भोजन करने वाले का अर्थात् जितनी पेट की क्षमता है उससे से अधिक भोजन करने वाले का योग सिद्ध नहीं होता, और न ही बिल्कुल न खानेवाले का योग सिद्ध होता है, क्योंकि यह श्रुति है कि 'जो अपने उदर(पेट) की क्षमता के अनुसार अन्न खाता है वह अन्न उसकी (जीव की) रक्षा करता है, यह पीड़ा नहीं देता। जो भोजन अधिक खाता है वह हानि पहुँचाता है और जो प्रमाण से कम होता है जितनी आवश्यकता शरीर की है उतना भोजन का न मिलना शरीर के लिए प्रतिकूल है, इसलिए वह रक्षा नहीं करता। इसलिये साधक को चाहिये कि शरीर की उदरपूर्ति के लिये जितना भोजन उपयुक्त हो उतना ही ग्रहण करें, उसमें कम या ज्यादा अन्न न खायें। योगी के लिये कितना खाना उपयुक्त है योग शास्त्र में इस विषय में कहते हैं कि — अन्न का जो परिमाण है उससे अधिक खाने वाले का योग सिद्ध नहीं होता। इसलिए सन्तुलित परिमाण यह है कि पेट का आधा भाग अर्थात् दो हिस्से तो शाक — पात आदि सहित भोजन के लिए, तीसरा भाग जलसे पूर्ण होना चाहिये वहीं चौथा भाग वायु के आवागमन के लिये खाली रखना चाहिये — इत्यादि। तथा हे अर्जुन ! इसी प्रकार न तो बहुत सोने वाले का ही योग सिद्ध होता है और न ही अधिक जागने वाले को ही योग — सिद्धि को प्राप्त होती है।

**युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।**

**युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥६/१७॥**

**अनुवाद** —नियमित आहार— विहार (आमोद—प्रमोद) करने वाले का, (धार्मिक) कार्यों में यथासमय इच्छा रखने वाले का, समयानुसार निद्रा तथा जागरण करने वाले का, योगाभ्यास दुःखों का नाश करने वाला होता है।

**व्याख्या** —योग सिद्ध कैसे होती है ? — यह कहते हैं। भोजन उतना ही करें जितना उदर(पेट) के लिए आवश्यक हो जितने में पेट की पूर्ति हो उतना ही खाएं उससे अधिक नहीं, योगाभ्यासी के लिए शास्त्रानुकूल परिमित आहार— विहार होता है विहार — अर्थात् पैरों की क्रिया अत्यधिक संचलन न हो और कर्मों में जैसे भोजन विसर्गादि क्रियाओं में जिसकी चेष्टा नियमित परिमाण से होती है, अर्थात् जितने से कार्य सिद्धि हो जाय उतनी, निद्रा और जागरण ये दोनों कार्य ही जिसके समयानुसार हैं—परिमित हैं, अर्थात् 'दश नाड़ी (घड़ी) जागे, दश नाड़ी निद्रा लें, पीछे दश नाड़ी जागे, इस प्रकार से योगी की दश नाड़ियाँ बतायी गयी हैं। आहार—विहार, निद्रा के अधिक होने से राजस और तामस की वृद्धि होती है। जिससे समाधि में विघ्न होता है। इसीलिए इन सभी का परिमित एक समान होना आवश्यक है इस प्रकार के लक्षणों से युक्त 'योग' साधक के दुखों का नाश करने वाला होता है।

**यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।**

**निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥६/१८॥**

**अनुवाद** —जिस समय विशेष रूप से (योगी द्वारा) वश में किया हुआ मन, स्वयं में ही भलीप्रकार से स्थित हो जाता है, उस समय सभी प्रकार के भोगों (सांसारिक भोग विषयों) से रहित पुरुष योग(समाधि) में स्थित है, इस प्रकार कहा जाता है।

**व्याख्या** —साधक कब समाधिस्थ हो जाता है यह बताते हैं— शरीर के बहिरंग एवं अन्तरंग साधनों के द्वारा निरन्तर योगाभ्यास करने वाले साधक द्वारा, विषयों के सम्बन्ध से रहित प्रयत्नपूर्वक वश में किया हुआ मन अर्थात् बलपूर्वक एकाग्रता को प्राप्त हुआ चित्त, सम्पूर्ण वासनाओं, सभी कामनाओं और बाहरी विषयों के नष्ट हो जाने पर स्वयं

सत् (आत्मा-परमात्मा) के स्वरूप में एकीभाव हो जाने पर नित्य स्व (स्वयंमे-समाधिमे) स्वरूप में ही स्थित हो जाता है।

**यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।**

**योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥६/१६॥**

**अनुवाद** —जिस प्रकार वायुरहित स्थान में दीपक हिलता-डुलता (विचलित) नहीं, (उसी प्रकार) परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के वश में किये हुए मन की तुलना की गयी है।

**व्याख्या** —योगी का समाधि में स्थित जो चित्त है उसकी उपमा में कहते हैं कि—जिस प्रकार वायु रहित स्थान पर रखा हुआ दीपक विचलित नहीं होता, उसी प्रकार आत्मस्वरूप परमात्मा में लगा हुआ आत्मवित्त का चित्त विचलित नहीं होता। आत्मा को लक्ष्य करके अभ्यास करनेवाले योगी द्वारा वश में किये हुए चित्त की अर्थात् मन की गतिको प्रत्यक्ष देखने वाले योगवेत्ता पुरुषों ने मानी है। जिससे सादृश्य बतलाया जाता है वह उपमा है।

**यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।**

**यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥६/२०॥**

**अनुवाद** —जिस अवस्था में योग के अभ्यास से विषयों से निवृत्त मन उपशम को प्राप्त होता है और जिस अवस्था में (आत्म चिन्तन से) विशुद्ध बुद्धि द्वारा परब्रह्मस्वरूप परमात्मा को देखता हुआ स्वयम् में ही सन्तुष्ट रहता है।

**व्याख्या** —अन्तरंग एवं बहिरंग शारीरिक साधनों की सिद्धि से योगाभ्यासी द्वारा सम्पूर्ण विषय-वासनाओं को त्यागकर, चंचलता से युक्त मन को सभी ओर से नियंत्रित करके जिस काल में साधक का मन केवल अपने शुद्ध सत्त्वांश से उपशमता को प्राप्त होता है। तथा जिस समय योगाभ्यासी द्वारा अति निर्मल स्वच्छ हुए अन्तःकरणसे आकाश में पूर्ण चन्द्रबिम्ब के सामान तेजोमयी परब्रह्म स्वरूप आत्माका साक्षात् हो जाता है उस समय वह स्वयं स्वरूप में ही सन्तुष्ट हो जाता है और तृप्तपूर्ण आनन्द का लाभ लेता है।

**सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।**

**वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥६/२१॥**

**अनुवाद** —जिस अवस्था में विशुद्ध सूक्ष्मबुद्धि से ग्रहण करने योग्य एवं इन्द्रियों से अतीत (जिसे इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण न किया जा सके केवल सूक्ष्म बुद्धि से ही ग्रहण योग्य) जो उस परम आनन्द का अनुभव करता है और जिस अवस्था में स्थित यह (योगी) आत्मा के स्वरूप से विचलित होता ही नहीं।

**व्याख्या** —जो सुख केवल (बुद्धिग्राह्य) योगियों के सत्त्वस्वभाव वाली सूक्ष्मबुद्धि के द्वारा ही ग्रहण किया जाने योग्य (केवल स्ववृत्ति ग्राह्य) है, अतीन्द्रिय है — इन्द्रियों तथा विषयों के सम्बन्ध से रहित, जो इन्द्रियों की पहुँच से बाहर है, वह सुख आदि तथा अन्त से रहित अनन्त है वही सुख परमानन्द है, जिस काल में तथा जिस अवस्था में योगी (साधक) उस आत्म आनन्द का अनुभव कर लेता है तथा जिस काल में योगी मन की एकाग्रवृत्ति से स्वस्वरूप स्वात्म में स्थित हो जाता है और उसका अनुभव करता है तब वह योगी उस आत्मतत्त्व के वास्तविक स्वरूप से विचलित नहीं होता।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।

यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥६/२२॥

**अनुवाद** —जिस (आत्मतत्त्व) को प्राप्त करके (जो) उससे अधिक (श्रेष्ठ) दूसरा कोई भी लाभ नहीं मानता। जिस अवस्था में स्थित होकर (योगी) अत्यन्त भारी दुःख से भी विचलित नहीं होता।

(योगी के लिए) आत्मा का साक्षात्कार करना ही परम लाभ है आत्मा की उत्पत्ति का परम कारण जिस निर्विकल्प समाधि और उसके कार्यभूत आत्मलाभ को प्राप्त कर साधना में रत योगी किसी अन्य अनात्मविषय के लाभ को आत्मलाभ के विषय से अधिक नहीं मानता और आत्मा के अलावा अन्य सभी पदार्थ असत्, मायिक, मिथ्या और दुःख के बीज हैं इस प्रकार जानकर योगी इनके लाभ को तुच्छ मानकर इनका स्मरण नहीं करता। अंतःकरण आत्मतत्त्व में अवस्थित होकर आभ्यांतर बाह्य विषयों को भुलाकर सद्भाव को प्राप्त हुई वृत्ति से योगी भौतिक तथा आध्यात्मिक महान दुखों से विचलित नहीं होता।

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसज्जितम् ।

स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥६/२३॥

**अनुवाद** —उसको (समाधि अवस्था) दुःख रूपी भौतिक विषयों से रहित योग (इसप्रकार) जानना चाहिए। वह योग विचलित हुए बिना, धीरज और उत्साह युक्त मन से दृढ़ता के साथ अभ्यास करना चाहिए।

**व्याख्या** —यहाँ योग के लक्षणों को बताया गया है — बाह्य विषयों के उपशमन से पवित्र हुए मन अन्तःकरण की अवस्था को योग ऐसा जानना चाहिए, दुःखसंयोगवियोगम् — भौतिक आध्यात्मिक आदि दुखों के और सुखों के संयोग से जिसका वियोग होता है अर्थात् जिसमें बाहर के सुःख-दुःखों की प्रतीति न हो ऐसी विशेष प्रकार की अंतःकरण की अवस्था को योग जानना चाहिए। काय चित्त आदि में उत्पन्न होने वाले आलस्य पीड़ा आदि दोषों से रहित, विचलित न हुए स्थिर अंतःकरण से धैर्य धारण करके तथा तीव्र मोक्ष की इच्छा से युक्त मन से समाधि का अनुष्ठान करना चाहिए। अर्थात् निश्चयता से योग का साधन करना चाहिए।

सङ्कल्पप्रभवान्कामास्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।

मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥६/२४॥

**अनुवाद** —संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली सभी भौतिक इच्छाओं को पूर्णरूप से त्यागकर, मन के द्वारा निश्चय ही सभी ओर से, इन्द्रियों के समूह को वश में करके।

**व्याख्या** —संकल्पप्रभव— संकल्प से उत्पन्न होने वाले सम्पूर्ण कर्मों का अर्थात् सम्पूर्ण विषयों की अभिलाषाओं का, निःशेष रूप से त्यागकर यानि उन कामनाओं का लेशमात्र भी शेष न रह जाना इस प्रकार से सर्वत्र कामना का त्याग करते हुए तथा काम और संकल्प से दूर रहने वाले विवेकी मन से नेत्र वाणी आदि इन्द्रियों की विषयों में होने वाली प्रवृत्ति को सब ओर से रोककर अर्थात् मन द्वारा इन्द्रियों का निग्रह करके।

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥६/२५॥

**अनुवाद** — धैर्य युक्त बुद्धि के द्वारा धीरे-धीरे (एक-एक करके क्रम से) विश्रान्ति को प्राप्त हो तथा मन को आत्मा (समाधि) में स्थित करके अन्य कुछ भी चिन्तन (मनन) न करें।

**व्याख्या** — शनैः शनैः यानि एक साथ नहीं धीरे-धीरे क्रमशः पहले बाह्य विषयों से, फिर इन्द्रियों से तत्पश्चात् अन्तस्थ विपरीत विषयों से धीरे धीरे अंतःकरण मन को व्यापार रहित करें यानि संयम करें। मन को ज्ञानरूपी शान्त आत्मा यानि सम्यक् चैतन्यरूप आत्मा में लय करें, स्थित करें, इस प्रकार मन को आत्मसंस्थ करके साधक स्वयं ही बाह्य और आन्तरिक किसी भी वस्तु का चिन्तन न करें।

**यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।**

**ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥६/२६॥**

**अनुवाद** — चंचल और स्थिर न रहने वाला मन जिस जिस शब्दादि विषयके लिए संसार में विचरण करता है उस उस विषय से इस मन को निरुद्ध करके दृढ़ता से अपने वश में करें।

**व्याख्या** — विषय वासनाओं के प्रभाव से चंचल तथा राग-द्वेष आदि दोषों के कारण अस्थिर मन स्वविषय आत्मा का त्याग कर रागा दी विषय वासनाओं से जाने अनजाने में जिन-जिन विषयों में प्रवृत्त होता है उन उन विषयों से इस मन को रोककर अर्थात् उन उन विषयों में दुःखत्व बन्धकत्व और तत्त्वनिरूपण द्वारा असत्त्व का उद्घाटन करके वैराग्य की भावना से इस मन को बारम्बार खींचकर आत्मा में ही इसका निरोध करें अर्थात् स्थित करें। इस प्रकार बार बार प्रयत्नपूर्वक योगीद्वारा मन को आत्मस्थित कर लिया जाता है।

### 14.3 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् हमें यह ज्ञात होता है कि ध्यान योग का हमारे जीवन पर पूर्ण प्रभाव होता है। जिससे अन्तःकरण की शान्ति एकाग्रचित्त बुद्धि, बाहरी द्वंद्वों से रहित सुख पूर्वक जीवन का निर्वाह आदि होता है। इसलिए ध्यान योग करने के लिए हमें सर्वप्रथम आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाओं को वशमें रखते हुए मनको एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिये योगका अभ्यास करना चाहिए। शुद्ध (पवित्र) भूमि में शरीर, सिर और गर्दन को समान रूप से स्थिर करते हुए अपनी नासिका के आगे वाले भाग को एकटक देखकर ध्यान लगाना चाहिए। अन्तःकरण मन अविचलित और शान्त हो, भय से रहित, ब्रह्मचर्य में स्थित होकर आत्मस्थित होना चाहिए। कृष्ण भी कहते हैं — संयमित किये हुए मन वाला मनुष्य हमेशा स्वयं को मुझ परममोक्ष स्वरूप परमेश्वर में लगाते हुए, मुझमें स्थित होकर परमशान्ति को प्राप्त करता है। इसी प्रकार जो मनुष्य नियमित आहार-विहार आमोद-प्रमोद करने वाला, धार्मिक कार्यों को करने वाला, समयानुसार शयन और जागरण करने वाला, इस प्रकार से किया जाने वाला योगाभ्यास समग्र दुःखों का नाश करने वाला होता है। जो आत्मस्थित पुरुष होता है वह जिस समय स्वयं में ही भलीप्रकार से स्थित हो जाता है, उस समय सभी प्रकार के सांसारिक भोग विषयों से रहित होकर योग समाधि में स्थित हो जाता है। जैसे वायुरहित स्थान पर दीपक हिलता-डुलता नहीं, वैसे ही परमात्मा के ध्यान में लगा हुआ पुरुष का वश में किया हुआ मन विचलित नहीं होता। विशुद्ध सूक्ष्मबुद्धि से ग्रहण करने योग्य, इन्द्रियों से अतीत उस परमात्मा में स्थिर हुआ पुरुष परम आनन्द का अनुभव करता है। योग का स्वरूप बताते हुए कृष्ण कहते हैं कि —

जिस अवस्था में योगी आत्म स्वरूप से विचलित नहीं होता तथा जिस आत्मतत्त्व को प्राप्त करके उससे अधिक श्रेष्ठ दूसरा कोई लाभ भी नहीं मानता। जिस अवस्था में योगी भारी दुखों से भी विचलित नहीं होता ऐसे दुःखरूपी भौतिक विषयों से रहित उस समाधि अवस्था को योग जानना चाहिए। उस योग का विचलित हुए बिना, धीरज और उत्साह युक्त मन से दृढ़ता के साथ अभ्यास करना चाहिए। संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली सभी भौतिक इच्छाओं को त्यागकर, इन्द्रियों के साथ मन को सभी ओर से वश में करके फिर मन को आत्मा समाधि में स्थित करके अन्य किसी का भी चिन्तन न करें। इसी प्रकार ध्यान योग के द्वारा हम भी अपने जीवन को सरल शान्त और सुखद बना सकते हैं।

---

#### 14.4 शब्दावली

---

- (६/१०)– यतचित्तात्मा – इन्द्रियों सहित शरीर को वश में रखने वाला, निराशी – आशारहित, अपरिग्रह – संग्रह रहित
- (६/११)– शुचौ – शुद्ध, चैलाजिन – मृगछाला
- (६/१२)– यतचित्तेन्द्रियक्रिय – इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए
- (६/१३)– सम्प्रेक्ष्य –दृष्टि जमाकर
- (६/१४)– विगतभी – भय रहित, मत्पर – मेरे परायण होकर
- (६/१५)– निर्वाणपरमाम् – परमानन्द की पराकाष्ठ रूप
- (६/१६)– अश्नतः – खाने वाले का अनश्नतः – न खाने वाले का
- (६/१७)– युक्ताहार – विहार – यथायोग्य आहार-विहार करने वाला
- (६/१८)– विनियतम् – वश में किया हुआ निस्पृह – स्पृहा रहित
- (६/१९)– निवातस्थः – वायु रहित स्थान में स्थित इङ्गते – चलायमान
- (६/२०)– योगसेवया – योगाभ्यास से उपरमते – उपराम हो जाना
- (६/२१)– वेत्ति – अनुभव करना अतीन्द्रिय – जो इन्द्रियों के वश के बाहर है
- (६/२२)– गुरुणा – बड़ा भारी विचाल्यते – चलायमान
- (६/२३)– अनिर्विण्णचेतसा – धैर्य और उत्साहयुक्त मन से योगसञ्ज्ञितम् – जिसका नाम योग है
- (६/२४)– विनियम्य – भलीभाँति रोककर अशेषतः – निशेष रूपसे
- (६/२५)– शनैः, शनैः – क्रमपूर्वक, क्रम – क्रम से (धीरे-धीरे)
- (६/२६)– निश्चरति – विचरता है नियम्य – रोककर, हटाकर

---

#### 14.5 बोध /अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

---

1. "ध्यान" योग से क्या – क्या लाभ है?
2. योगी के गुणों एवं स्वरूप का निरूपण कीजिये ?
3. योगी के स्वरूप का निरूपण कीजिये ?
4. कर्म में प्रवृत्त होने पर भी साधक की अकर्मिता का निरूपण कीजिये ?
5. ज्ञानी के सभी कर्म किस प्रकार लीन हो जाते हैं उसका निरूपण कीजिये ?



---

## 14.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

- श्रीमद्भगवद्गीता माहात्म्य – गीताप्रेस गोरखपुर
- श्रीमद्भगवद्गीता साधारण भाषाटीकासहित – गीताप्रेस गोरखपुर
- श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप – भक्तिवेदान्तबुक ट्रस्ट
- श्रीमद्भगवद्गीता गीतातात्पर्यबोधिनी – श्रीशंकरानन्दसरस्वतीविरचित, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
- श्रीमद्भगवद्गीता – साधकसंजीवनी हिन्दीटीका – गीताप्रेस गोरखपुर
- पातञ्जलयोगदर्शनम् – व्यासभाष्यसहित 'योगदीपिका' – चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली।



ignou  
THE PEOPLE'S  
UNIVERSITY